International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

दलित साहित्य की वैचारिकता

डॉ0 **संतोष रानी**,
Junior Lecturer, Govt. Girls Sr. Sec. School, Madina, Rohtak

विचार मानव समाज की धरोहर होते हैं। जो हर युग व परिस्थिति में मौजूद रहे हैं। विश्व में अनेक विचारक पैदा हुए हैं। जिन्होंने मानव जाति को अमूल्य विचार दिए हैं। ऐसे विचारकों में रूसो, मार्क्स, लेनिन, माओत्से तुंग, सिगमण्ड फ्रॉयड, महात्मा गाँधी, डॉ0 अम्बेडकर आदि के नाम लिए जा सकते हैं। विचारों की सत्ता सम्पूर्ण समाज पर कायम होने से समाज का हर तबका हर युग में किसी–न–किसी विचार से प्रभावित रहा है। विचार, तब तक विचार रहता है जब तक यह समाज के सीमित क्षेत्र को प्रभावित करता है। जैसे ही इसका क्षेत्रफल विस्तृत होता है तो यह वाद का रूप धारण कर लेता है। दलित समाज व साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। यह मार्क्सवाद, गांधीवाद, बौद्धदर्शन व अम्बेडकरवाद आदि विचारधाराओं से प्रभावित रहे है। इन्हीं विचारधाराओं से प्रेरणा लेकर दलित साहित्य अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुआ है।

बौद्ध दर्शन

गौतम बुद्ध एक सामाजिक क्रांतिकारी, चिंतक, दार्शनिक तथा समतावादी महापुरूष हुए, जिन्होंने सर्वप्रथम लोकतान्त्रिक क्रांति को जन्म दिया। बौद्धकालीन व्यवस्था चतुर्वर्ण पर आधारित थी जिसमें उच्च वर्गीय समाज द्वारा निम्नवर्गीय व्यक्तियों के साथ बुरा व्यवहार किया जाता था। उन्हें देखने मात्रा को अपशगुन माना जाता था। गौतम बुद्ध ने सर्वप्रथम इस वर्णव्यवस्था वादी समाज को चुनौती दी तथा निम्न वर्गीय लोगों को अपने संघ में दीक्षित किया। तथागत बुद्ध के इसी समतावादी चिंतन से दलित समाज की सामाजिक क्रांति का शंखनाद माना जाता है।

"जाति प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने इस देश में एक महान आंदोलन का आरम्भ किया, जो गाँधी और अम्बेडकर तक चलता आया है और आज भी चल रहा है। उन्होंने मनुष्य की मर्यादा को यह कहकर ऊपर उठाया कि कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से पूज्य नहीं हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित होता है। उच्चता और नीचता जन्म पर नहीं, कर्म पर अवलम्बित है।"[1]

बुद्ध के मन, वचन और कर्म में एकरूपता थी। वे जो कहते थे, उस पर पहले खुद चलते थे। इसलिए उनका एक नाम 'तथागत' भी है। वर्ण–व्यवस्था के विरोध और समानता के सिद्धान्त को बुद्ध ने सबसे पहले अपने भिक्षु–संघ में ही लागू किया।

बौद्ध दर्शन का केन्द्र बिन्दू मनुष्य व मनुष्यता है। आदि से अंत तक वह केवल मनुष्य के सम्बंध में चिन्तन करता है। यह समाज में स्वतन्त्राता, समानता, बंधुत्व व भाईचारे की स्थापना का समर्थक रहा है। इसीलिए इसे लोकतान्त्रिाक मूल्यों की स्थापना का पक्षधर भी माना जाता है। विभिन्न जाति, वर्ण, लिंग, कुल, गोत्रा और प्रदेश के होते हुए भी भिक्षु–संघ के सदस्य एक थे। बौद्ध दर्शन के इसी मानवतावादी दृष्टिकोण तथा प्रेम, भाईचारा और समानता की शिक्षा से प्रभावित होकर महान मौर्य सम्राट अशोक ने न केवल बौद्ध धर्म धारण किया; बल्कि उसे "सात द्वीप नौ खंडों' में प्रचारित–प्रसारित भी किया।

बौद्ध धर्म पददलितों के लिए आशा का दीप है। मानव–मानव के बीच समानता और बंधुता के आधार पर सम्बंध स्थापित करता है। इसकी व्याख्या ईश्वरवादी न होकर मानवतावादी है। इसी मानवतावादी विचारधारा को हिन्दी साहित्य में संत कवि रैदास व कबीर ने वाणी दी तथा तात्कालीन समाज में एक क्रांतिकारी चेतना का संचार किया जो उस जड़ समाज की रूढ़ परम्पराओं को तोड़ने के लिए आवश्यक थी।

"बौद्ध साहित्य वह प्रथम साहित्य है। जिसमें उस विलक्षण वैचारिक क्रांति का वर्णन है, जिसमें मनुवादी ताकतों की धज्जी उड़ाई गई है। वहीं से दलित समाज व चिंतन को नई दिशा प्राप्त हुई।"[2] वर्तमान में दलित साहित्य व दलित आंदोलन बौद्ध दर्शन की समतावादी–विचारधारा को अपनाकर अपने संघर्ष पथ पर अग्रसर है। गौतम बुद्ध ने जिस क्रांति की चिंगारी आज से ढाई हजार साल पहले फूँकी थी आज उसी चिंगारी ने दलित समाज में बारूद का काम किया है तथा दलित समाज व साहित्य वर्णवादी व मनुवादी ताकतों के सामने एक चुनौती के रूप में उभरकर आ रहे हैं। निस्संदेह दलित आंदोलन के प्रारम्भिक स्वरूप में बौद्ध साहित्य की अहम् भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है। जिसको आज के संदर्भ में दलित साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में मानना उचित होगा।

इस प्रकार बौद्ध धर्म भारत में जाति–प्रथा के खिलाफ पहली ऐतिहासिक क्रांति थी, जिसका प्रभाव आज सबसे अधिक है। कबीर, नानक, रैदास आदि संत कवियों की वाणी में जो सामाजिक रुढ़ियों के प्रति नकार व विद्रोह है, वह अनायास नहीं है, बल्कि बौद्ध धर्म की जाति–वर्ण विरोध और मानवीय समानता का भाव है। डॉ0 अम्बेडकर व आज का दलित समाज, साहित्य व आन्दोलन इसी बौद्ध दर्शन की मानवतावादी अवधारणा को प्रेरणा स्रोत मानकर ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रहे तथा वर्तमान में भी यह संघर्ष जारी है।

मार्क्सवाद

कार्लमार्क्स राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवम् दार्शनिक क्षेत्र में क्रांतिकारी विचारक माने जाते हैं। जिन्होंने विश्व चेतना को गहराई तक प्रभावित किया हैं। इनको आधुनिक समाजवाद के जनक के साथ–साथ आर्थिक समाज सुधारक भी कहा जाता है। इन्होंने सम्पूर्ण सत्ता को अर्थ से प्रभावित बताया है। इनका मानना है कि किसी भी समाज के विकास की प्रक्रिया में आर्थिक तत्त्व या भौतिक तत्त्व की भूमिका होती है। मानवीय सम्बंधों के साथ–साथ कला, साहित्य, विज्ञान, संस्कृति, धर्म, कानून आदि तत्वों की भूमिका भी मार्क्स के अनुसार आर्थिक तत्त्वों के साथ जुडी होती है।

मार्क्स एक तर्कवादी विचारक थे। इनके आधारभूत सिद्धान्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की आर्थिक व्याख्या, वर्ग–संघर्ष व अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त है।

वर्तमान युग भूमण्डलीकरण के दौर से गुजर रहा है जिसमें पूरा विश्व सिमट कर एक समाज की तरह दिखाई देता है जहाँ सर्वत्रा अर्थ की सत्ता दिखाई पड़ती है। आज भी समाज में उच्च व निम्न वर्ग के मध्य एक बहुत बड़ी खाई है। जिसे मिटाना असम्भव–सा प्रतीत होता है। वर्तमान युग में इन दोनों वर्गों के बीच एक मध्यम वर्ग भी उभरकर आया है जो दोनों वर्गों के बीच पिसता नजर आता है। ऐसी परिस्थितियों को देखकर मार्क्सवाद की प्रासांगिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

समाज साहित्य का प्रेरणास्रोत होता है। मार्क्सवादी विचारकों ने समय–समय अपने अमूल्य विचारों से समाज को प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादियों की एक पूरी परम्परा दिखाई पड़ती है जिसमें नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, रामबिलास शर्मा, नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, रमणिका गुप्ता आदि हैं। इसके साथ–साथ दलित साहित्य भी मार्क्सवादी विचारधारा से अछूता नहीं रहा है। इनकी साम्यवादी विचारधारा दलितों के कष्टों व उत्पीड़न का निवारण करती है।

मार्क्सवाद आर्थिक असमानता को मिटाकर समाज में समानता, न्याय व शोषण रहित समाज की व्यवस्था करना चाहता है। दलित समाज अब तक इन सब चीजों से बेदखल किया जाता रहा है। अतः मार्क्सवादियों की आर्थिक विकास की अवधारणा दलितों के लिए वरदान साबित हो रही है, क्योंकि समाज में आर्थिक स्थिति से ही व्यक्ति की सामाजिक स्थिति सुदृढ़ होती है। इसके बावजूद दलित तथा दलित साहित्यकारों द्वारा मार्क्सवाद पर भिन्न–भिन्न आरोप लगाए जाते रहे हैं। "वर्ग–विहीन समाज की संकल्पना, आर्थिक समानता और सत्ता संघर्ष के कारण यह मार्क्सवाद के करीब दिखाई देता है किन्तु दलित चेतना और मार्क्सवादी चिंतन में पर्याप्त अन्तर है। एक के केन्द्र में अर्थ और वर्ग है, तो दूसरे में वर्ण और संस्कृति। दलित की मूल चिंता, मनुवाद का विरोध करते हुए, असमानता और अस्पृश्यता का अंत करना है। मार्क्सवाद के वर्ग–चिंतन में वर्ण–चिंतन का सर्वथा अभाव है। उसने भारतीय वर्ण–व्यवस्था को भी वर्ग व्यवस्था के अन्दर ही देखा है। मार्क्स के चिंतन में और व्यवहार में भी आर्थिक वर्ग तो बदल जाते हैं, अर्थात् धनी व्यक्ति गरीब बन सकता है और गरीब व्यक्ति धनी, किन्तु भारतीय वर्ण और जाति व्यवस्था अपरिवर्तनीय है। इसमें नीचे से ऊपर या ऊपर से नीचे आने की कोई सहुलियत नहीं है। जातियाँ कभी नहीं बदलती। जन्म लेने से पहले और मृत्यु के बाद तक भारतीय मनुष्य का पीछा करती हैं। मार्क्सवाद ने भारतीय समाज की इस सच्चाई को नहीं समझा था।"[3] इस प्रकार मार्क्सवादी विचारधारा को आर्थिक समानता तक ही सीमित मानकर उसे दलित साहित्य के परिप्रेक्ष्य में नकारा जाता है। इसी संदर्भ में रमणिका गुप्ता कहती है– "दलित की अस्मिता, सम्मान और स्वाभिमान के लिए जितनी सामाजिक समानता जरूरी है, उतनी ही जरूरी है उनके लिए जमीन रोजगार की गारंटी और आर्थिक परजीविता से मुक्ति। जैसे उनके सवाल केवल आर्थिक नहीं सामाजिक भी हैं उसी के तहत उनके प्रश्न केवल सामाजिक नहीं आर्थिक भी हैं।"[4] इन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा के बदलते सरोकारों की चर्चा की है जिसमें आर्थिक समानता के साथ–साथ सामाजिक समानता को समेटना भी आरम्भ किया है।

मार्क्सवाद ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है और इसे भारतीय सन्दर्भ में नकारकर इस विचारधारा के प्रति संकुचित दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता। अगर हम ऐसा सोचते हैं तो यह हमारी एकांगी विचारधारा होगी, जो मार्क्सवादी

विचारधारा के साथ न्याय नहीं होगा। इस संदर्भ में समन्वयवादी विचारधारा को अपनाते हुए शरणकुमार लिम्बाले कहते हैं– "दलित साहित्य दलितों के संघर्ष का साहित्य है। अब दलित साहित्य आंदोलन को अम्बेडकरवाद के साथ–साथ मार्क्सवाद को भी स्वीकार करना होगा, तभी यह संघर्ष अर्थपूर्ण होगा, ऐसी समझ स्थापित करनी पड़ेगी।"[5] इस प्रकार मार्क्सवाद को दलित साहित्य व समाज के संदर्भ में नकारा नहीं जा सकता। यह दलितों के साथ–साथ गरीब, शोषित, पीड़ित हर वर्ग के लिए समर्पित विचारधारा है। जिसकी प्रासांगिकता दलित साहित्य में भी बनी हुई है।

गाँधीवाद

गाँधी जी के जीवन–दर्शन को ही गांधीवाद का नाम दिया गया है। महात्मा गाँधी के विचार दर्शन में सत्य व अहिंसा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ये दोनों मूल तत्व गाँधी जी की सम्पूर्ण चिंतन धारा में निहित है। अहिंसा के मार्ग को अपनाते हुए ही उन्होंने सम्पूर्ण भारत को आजादी दिलाई और ब्रिटिश सरकार को मात दी। गाँधीवाद की यह विचारधारा कहीं–ना–कहीं महात्मा बुद्ध से जाकर भी मिलती है क्योंकि अहिंसा की अवधारणा सर्वप्रथम गौतम बुद्ध ने ही दी थी।

"गाँधी दर्शन में सत्याग्रह का विशिष्ट स्थान है। महात्मा गाँधी का मानना है कि अहिंसक साधनों द्वारा सत्य के लिए साधना ही सत्याग्रह है।"[6] सर्वोदय का सिद्धान्त रामराज्य की कल्पना के रूप में देखा जा सकता है जिसमें वर्गविहीन समाज की कल्पना के लिए उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

अस्पृश्यता को महात्मा गाँधी सबसे बड़ा अभिशाप मानते थे। हालांकि वे वर्ण व्यवस्था विरोधी नहीं थे लेकिन उन्होंने अछूतों के कल्याण के लिए प्रयास किये। वर्ण व्यवस्था के सम्बंध में उनका मानना था कि वर्ण व्यवस्था व छुआछूत दोनों अलग चीजें हैं। वर्ण व्यवस्था द्वारा वे समाज में रामराज्य के सपने को साकार करना चाहते थे। इसके माध्यम से समाज में अव्यवस्था व अराजकता का वातावरण नहीं होता और समाज में शांति कायम रह सकती है। उन्होंने दलितों को एक नाम 'हरिजन' दिया । उनका मानना है– "मैं पूनर्जन्म नहीं चाहता, लेकिन अगर मुझे फिर जन्म लेना ही पड़े तो मैं अस्पृश्यों में ही जन्म लूँ, जिससे उनके अपमान का हिस्सा बन सकूँ, उनकी मुक्ति के लिए काम कर सकूँ।"[7] इस प्रकार महात्मा गाँधी जहां एक तरफ अस्पृश्यता को भारतीय समाज का कोढ़ स्वीकार करते हैं, वहीं दूसरी तरफ वर्ण व्यवस्था के समर्थक भी हैं।

अम्बेडकरवाद

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एक लोकतान्त्रिक नेता थे। जिन्होंने 'सामाजिक न्याय' रूपी तलवार का प्रयोग भारतीय समाज के निम्न वर्ग तथा अछूतों के साथ होने वाले अमानवीय व्यवहार एवम् तिरस्कार के विरूद्ध किया। सामाजिक न्याय के प्रति उनकी कटिबद्धता समाज के अधम, असमर्थ तथा निम्न वर्ग के लिए थी। डॉ0 अम्बेडकर की इसी अवधारणा को ताराचंद खण्डेवार कुछ इस तरह से परिभाषित करते हैं– "एक व्यक्ति एक मूल्य को मानकर स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृत्व अर्थात् सामाजिक नैतिकता को स्वीकार करते हुए व्यक्ति का सर्वागपूर्ण कल्याण साधने का संसदीय जनतान्त्रिक जीवन मार्ग अम्बेडकरवाद है।"[8] वह ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जो प्रभावशाली सामाजिक परिवर्तन के लिए संवैधानिक प्रणाली को स्थापित करने में विश्वास रखते थे।

डॉ0 अम्बेडकर का चिंतन मानवतावादी था जो देश प्रेम एवम् जनकल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत था। वे ईश्वर, नित्य, आत्मा, स्वर्ग–नरक, आवागमन, मोक्ष आदि में विश्वास नही करते थे। हिन्दू धर्मशास्त्रों को वे दलितों के लिए बंधनों का पुलिंदा समझते थे तथा उन्होंने हिन्दू धर्मग्रन्थों तथा धर्मशास्त्रों का गहराई से अध्ययन किया। अध्ययन के बाद ही उन्होंने पाया कि हिन्दू धर्म में दलितों के लिए कोई स्थान नहीं है। इसलिए उन्होंने मानवतावादी धर्म बौद्ध धर्म को अपनाया। उन्होंने कहा कि 'हिन्दू धर्म में जन्म लेना मेरे वश की बात नहीं थी लेकिन इसमें न मरना 'मेरे वश की बात है'। इसलिए उन्होंने 14 अक्तूबर, 1956 को लाखों मित्रों तथा अनुयायियों सहित नागपुर में बौद्ध धर्म ग्रहण किया। यह हिन्दू धर्म के ऊपर करारी चोट थी।

हिन्दू धर्म की वर्णव्यवस्था को डॉ0 अम्बेडकर एक अभिशाप से कम नही मानते थे। क्योंकि वर्णव्यवस्था ही एक ऐसी व्यवस्था थी जिसमें हर व्यक्ति का पेशा निर्धारित कर दिया गया। इसी वर्ण व्यवस्था की उपज जाति प्रथा है जिसे दलित समाज सदियों से कोढ़ के रूप में झेलता आया है। उन्होंने जाति प्रथा को 'चार मंजिला इमारत के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें ऊपर नीचे जाने के लिए कोई सीढ़ी नहीं होती।" अर्थात् जाति प्रथा एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें जो व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है उसी में मरता है। उसमें ऊपर–नीचे जाने की व्यवस्था नहीं है। उन्होंने वर्णव्यवस्था के सन्दर्भ में का

है– "मेरे लिए यह चातुर्वर्ण्य जिसमें पुराने नाम जारी रखे गये हैं, घिनौनी वस्तु है, जिससे मेरा पूरा व्यक्तित्व विद्रोह करता है.. .....यह चातुर्वर्ण्य सामाजिक संगठन प्रणाली के रूप में अव्यवहारिक, घातक और अत्यन्त असफल रहा है।"[9] उन्होंने यह भी माना कि "वर्ण–व्यवस्था में व्यवसाय का निर्धारण कर्म एवम् क्षमता के आधार पर नहीं होता, बल्कि जन्म के आधार पर होता है, जो व्यावसायिक तथा औद्योगिक प्रगति और कार्यकुशलता के लिए हानिकारक है।"[10] इस प्रकार यह वर्ण व्यवस्था मनुष्य के सामाजिक विकास के साथ–साथ आर्थिक विकास में भी बाधक रही।

डॉ0 अम्बेडकर ने एक महान काम दलितों की समस्या का राजनीतिकरण किया था। इसके लिए उन्होंने अप्रैल, 1942 में 'शेडूल्ड कास्ट फैडरेशन' और सन् 1956 में 'रिपब्लिकन पार्टी' की स्थापना की। उनका गाँधी से टकराव भी इसी कारण होता रहता था। जो समाज सदियों से हाशिये पर रखा गया था। उनकी लडाई को राजनैतिक स्तर पर खड़ा करने का महान कार्य डॉ0 अम्बेडकर ने ही किया था। यह उनके चिंतन की इतनी बड़ी छलांग थी जो दुनिया की उठती हुई दूसरी कोमों के लिए एक अनूठी मिसाल थी। अमेरिका के नागरिक होते हुए भी नीग्रो जनता को वोट देने का अधिकार बहुत बाद में मिला था। लेकिन दलितों को यह अधिकार डॉ0 अम्बेडकर ने भारतीय आजादी से पूर्व ही दिला दिया था। यह राजनीतिक सक्रियता का ही परिणाम था कि उन्होंने दलितों के लिए अलग निर्वाचन मण्डल की कोशिश की लेकिन भारतीय वर्ण व्यवस्था के कर्णधारों ने इसे सफल नहीं होने दिया।

दलित आंदोलन व संघर्ष के साथ–साथ दलित साहित्य भी अम्बेडकरवाद से अछूता नही रहा है। दलित साहित्य को डॉ0 अम्बेडकर के जीवन दर्शन ने वैचारिक ऊर्जा दी। दलित साहित्य की प्रेरणा डॉ0 अम्बेडकर की क्रांतिकारी विचारधारा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ज्योतिबा फूले द्वारा तैयार की गई जमीन पर डॉ0 अम्बेडकर ने दलित जागृति के बीज बोए जो उनके जीवन काल में पल्लवित पुष्पित होकर एक सशक्त दलित सामाजिक राजनीतिक व सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में प्रस्फुटित हुए। दलित साहित्य की धार को ओर अधिक तेज करने में अम्बेडकरवाद की महत्ता को स्वीकार करते हुए वीरभारत तलवार कहते हैं– "अम्बेडकर के आंदोलन ने दलित साहित्य को प्रेरित किया तो उनकी विचारधारा दलित साहित्य का सैद्धान्तिक आधार बनी। यही कारण है कि बहुत से दलितों का लिखा साहित्य भी दलित साहित्य के अंदर नहीं माना जाता क्योंकि उसमें वह दलित चेतना नहीं मिलती, जिसे अम्बेडकर की विचारधारा और आंदोलन ने दलितों के अंदर पैदा किया।"[11]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है वर्तमान में दलित विमर्श व दलित साहित्य अत्यन्त ज्वलन्त व विचारणीय मुद्दा है! इसकी वैचारिकता गौतम बुद्व के मानवतावाद, कार्लमार्क्स के समाजवाद, गाँधी के सर्वोदय सिद्वान्त के इर्द–गिर्द घुमती दिखाई देती है लेकिन अम्बेडकर के समतावादी विचार इसकी आधारशीला कही जा सकती है जिन्होंने दलित साहित्य के साथ–साथ दलित आंदोलन को भी नये आयाम प्रदान किये है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, इलाहाबाद, लोकभारती, प्रकाशन, सं0 1992, पृ0 86
2. रामकुमार अहिरवार : दलित आन्दोलन और बौद्ध साहित्य, जय प्रकाश कर्दम (सं0): दलित साहित्य (वार्षिकी) 2004, दिल्ली, शब्द संयोजन, पृ0 53
3. हरिनारायण ठाकुर : दलित साहित्य का समाजशास्त्र, दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, सं0 2009, पृ0 59
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि (सं0) : दलित हस्तक्षेप, दिल्ली, अक्षर शिल्पी, सं0 2008ए पृ0 154
5. शरणकुमार लिम्बाले : दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, दिल्ली, वाणी प्रकाशन, सं0 2000, पृ0 69
6. डी0 आर0 जाटव : गांधी, लोहिया और अम्बेडकर, जयपुर, समता साहित्य सदन, सं0 1996, पृ0 14
7. गोपेश्वर सिंह : दलित आंदोलन, किधर, राजकिशोर (सं0) : दलित राजनीति की समस्याएँ, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, सं0 2006, पृ0 98
8. जयप्रकाश कर्दम : इक्कीसवीं सदी में दलित आंदोलन, दिल्ली, पंकज पुस्तक मन्दिर, सं0 2005ए पृ0 52
9. गिरिराज किशोर : दलित विमर्श, संदर्भ गाँधी, पृ0 92
10. यथावत्, पृ0 92
11. चमनलाल (सं0) : दलित और अश्वेत साहित्य : कुछ विचार, शिमला, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, सं0 2001, पृ0 48